षोडश संस्कार

भारतवर्ष में संस्कार केवल हिन्दू धर्म के ही नहीं, अपितु अन्य धर्म एवं सम्प्रदायों के महत्त्वपूर्ण अङ्ग रहे हैं और आज भी इस वैज्ञानिक विषम युग में, जबकि सभ्यता के विकास के नाम पर बुद्धि का दिवाला निकाल दिया गया है उस समय भी वे अपने महत्त्व को अक्षुण्ण बनाए हुए हैं। विगत अनेक शताब्दियों से संस्कार धार्मिक तथा सामाजिक एकता के प्रभावकारी माध्यम रहे हैं। इनका उदय सुदूर अतीत में हुआ था और कालक्रम से अनेक परिवर्तनों के साथ वे आज भी जीवित हैं। हिन्दू-संस्कारों का वर्णन वेदों के कुछ सूक्तों में कतिपय ब्राह्मण ग्रन्थों में, गृह्य-धर्म-सूत्रों में, तथा स्मृतियों में उपलब्ध होता है। वैदिक-साहित्य में यद्यपि कहीं भी संस्कार शब्द का प्रयोग नहीं मिला, किन्तु विभिन्न स्थलों पर उपनयन, अन्त्येष्टि आदि कतिपय संस्कारों के अङ्गों का वर्णन अवश्य प्राप्त होता है।

'**संस्कार**' शब्द की निष्पत्ति सम उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से घञ् प्रत्यय करने से होती है। इस शब्द का अर्थ है—धार्मिक विधि-विधान अथवा वह कृत्य जो आत्मिक सौन्दर्य का आन्तरिक तथा बाह्य दृश्य प्रतीक हो; यही नहीं, इस संस्कार पद से शिक्षा, संस्कृति, प्रशिक्षण, शुद्धि, परिष्करण, आभूषण अर्थ भी ग्रहीत होते हैं। "वीरमित्रोदय संस्कृत-प्रकाश" में संस्कार की प्राच्यकालीन मान्यता के सम्बन्ध में लिखा है, "**आत्म शरीरान्यतरनिष्ठो विहित-क्रियाजन्योऽतिशयः विशेषः संस्कारः**" अर्थात् शारीरिक एवं आध्यात्मिक प्रकृति के आधायक सविधि अनुष्ठानों का नाम संस्कार है।

मीमांसक '**संस्कार**' शब्द का आगम यज्ञांगभूत पुरोडाशादि की विधिवत शुद्धि से मानते हैं—"**प्रोक्षणादिजन्य संस्कारो यज्ञांग पुरोडाशेस्विति द्रव्यचर्मः।**" अद्वैत-वेदान्ती जीव पर शारीरिक क्रियाओं में मिथ्या आरोप को संस्कार कहते हैं—"**स्नानाचमनादिजन्याः संस्कारा देहे उत्पद्यमानानि तदभिधानानि जीवे कल्प्यन्ते**" तो दूसरी ओर नैयायिक भावों को व्यक्त करने की आत्मव्यंजक शक्ति को संस्कार कहते हैं। विभिन्न विचारों के होते हुए भी यह सदा से माना जाता रहा है कि सविधि सस्कारों के अनुष्ठान से संस्कृत व्यक्ति में विचक्षण एवं अवर्णनीय गुणों का प्रादुर्भाव हो जाता है।

शास्त्रीय दृष्टि से संस्कार गृह्य-सूत्रों की विषय-सीमा के अन्दर आते हैं, किन्तु इन ग्रन्थों में भी संस्कार शब्द का प्रयोग उसके वास्तविक अर्थ में प्राप्त नहीं होता है। वे भी मीमांसकों के अर्थ में ही इसका प्रयोग करते हैं और पंचम-संस्कार तथा पाक-संस्कार का उल्लेख करते हैं, जिसका अभिप्राय है यज्ञभूमि का मार्जन अथवा शोधन।

गृह्यसूत्र साधारणतः विवाह से प्रारम्भ कर समावर्तन-संस्कार पर्यन्त दैहिक संस्कारों का निरूपण करते हैं। अधिकांश में अन्त्येष्टि संस्कार का उल्लेख नहीं मिलता है। संख्या की दृष्टि से विचार करने पर आश्वलायन गृह्यसूत्र मे १२,

Scanned with CamScanner

पारस्कर, बोधायन एवं बाराह-गृह्यसूत्र में १३ तथा बैखानस गृह्यसूत्र में १८ संस्कारों का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार गौतम धर्मसूत्रों में ४० संस्कारों का निर्देश मिलता है। मनुस्मृति में तेरह संस्कारों को माना है। याज्ञवल्क्यस्मृति में केशान्त को छोड़कर, मनुस्मृति के शेष बारह संस्कारों का विधान है। परन्तु परवर्ती स्मृतियों में सोलह संस्कारों का उल्लेख मिलता है और जिन सोलह संस्कारों का विशेष प्रचलन रहा है; उनके नाम हैं—(१) गर्भाधान संस्कार, (२) पुंसवन संस्कार, (३) सीमन्तोन्नयन, ये तीनों ही संस्कार जन्म से पूर्व ही किए जाते हैं; (४) जातकर्म, (५) नामकरण, (६) निष्क्रमण, (७) अन्नप्राशन, (८ चूडाकर्म, (९) कर्णवेध; ये छः संस्कार बाल्यावस्था में किए जाते हैं; तथा (१०) विद्यारम्भ, (११) उपनयन, (१२) वेदारम्भ (१३) केशान्त अथवा गोदान, (१४) समावर्तन संस्कार; ये पाँचों संस्कार शैक्षणिक संस्कार हैं तथा विवाह शिक्षोपरान्त, अन्त्येष्टि जीवनोपरान्त करणीय संस्कार हैं। उपर्युक्त सोलह संख्या डा० राजबली पाण्डेय कृत "हिन्दू-संस्कार" नामक ग्रन्थ से उद्धृत है। किन्तु स्वामी दयानन्द ने अपनी "संस्कार-विधि" नामक पुस्तक में विद्यारम्भ को वेदारम्भ के अन्तर्गत तथा केशान्त व गोदान को समावर्त्तन में ही मानकर वानप्रस्थ एवं संन्यास इन दो संस्कारों को भी स्वीकार किया है। पँ० भीमसेन शर्मा कृत संस्कार-विधि में केवल स्वामी जी स्वीकृत १६ संस्कारों का ही समावेश हुआ है।

संस्कारों का प्रयोजन

संस्कारों का भारतवर्ष में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। चिरकाल से उनकी व्यवहारिक उपयोगिता और उद्देश्य रहा है, यद्यपि आज उनकी सत्ता एवं महत्ता पर प्रश्नवाची चिन्ह और निरुद्देश्यता का कलंक लग गया है, क्योंकि आज के इस वैज्ञानिक एवं परिवर्तित जीवन के साथ उनका सामंजस्य नहीं हो सका है। किन्तु इतना होते हुए भी उनकी अपनी महत्ता है। समाज-विज्ञान की दृष्टि से भी सँस्कार अपना महत्त्व रखते हैं, सामाजिक मानवीय गुणों के विकास में सदियों और सहस्राब्दियों के संस्कार ही काम करते हैं।

संस्कारों का सर्वाधिक लोकप्रिय प्रयोजन तो मानवीय विश्वास की पूर्ति ही है। श्रेष्ठ संस्कारों से, सद् आचरण से, मानव शुभ एवं पुण्य आचरण करता हुआ जीवन में सफलता प्राप्त करता है तथा अमंगल प्रभावों को दूर करता है। समस्त हिन्दू-संस्कारों में इन अमङ्गलजनक तथा भूत-प्रेत-पिशाचों के निराकरण के लिए नाना प्रकार की स्तुतियाँ एवं अनुष्ठान यहाँ सदा से होते रहे हैं। जल-प्रोक्षण से जहाँ शरीर शुद्धि होती थी, वहीं अभिसिंचित जल से भूत, पिशाच एवं राक्षसों से रक्षा की जाती थी। इन अनुष्ठानों से अभीष्ट प्रभावों को आकृष्ट किया जाता था। भारतीय जन-जीवन में यह विश्वास घर किए हुए था कि ईश्वर सर्वव्यापक है। देवता मानव जीवन के सर्वतः अभिव्याप्त हैं; उन्हें सन्तुष्ट रखना आवश्यक है, उनके सन्तुष्ट होने पर अभीष्ट सुख

Scanned with CamScanner

की प्राप्ति होगी, अतः संस्कारों से व्यक्ति सर्वदा देवों की स्तुति करता एवं बड़ों से आशीर्वाद इन अवसरों पर ग्रहण करता था। संस्कारों का भौतिक प्रयोजन भी यह था कि यज्ञ-याग अनुष्ठानों के समय देव-स्तुति होती है। इन स्तुतियों के माध्यम से देव हमारी आवश्यकताओं का ज्ञान लेते हैं और फिर वे धनधान्य आदि हमें प्रदान करते हैं। इसी प्रकार आत्माभिव्यक्ति के साधन भी ये संस्कार होते हैं क्योंकि इन विशेष अवसरों पर मनुष्य हर्ष, शोक और दुःख आदि को भी व्यक्त करने के लिए इन संस्कारों का आयोजन कभी-कभी करता है। जहाँ संस्कारों के उपर्युक्त प्रयोजन हैं, वहाँ इन संस्कारों के गम्भीर सांस्कृतिक प्रयोजनों का भी विद्वानों ने निर्देश किया है। मनुस्मृतिकार का तो यहाँ तक कहना है कि गार्भ, होम, जातकर्म, चूडाकर्म और मौञ्जीबन्धन संस्कार के अनुष्ठान से द्विजों के गर्भ तथा बीज सम्बन्धी दोष दूर हो जाते हैं।[1]

तो दूसरी ओर इन संस्कारों से पवित्रता आदि का भी शरीर पर आधान किया जा सकता है। मनुस्मृति में लिखा है कि प्रत्येक द्विज को, स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर की शुद्धि के लिए षोडश संस्कार करने चाहिए; जिनसे इस लोक एवं परलोक में पवित्रता की प्राप्ति होती है।[2] इन संस्कारों में यज्ञयाग की पूर्ण प्रक्रियाओं को किया जाता है, अतः यह शरीर ब्रह्म शरीर भी कहा जाता है।

मनु का कहना है कि स्वाध्याय, जप, यज्ञ, महायज्ञ आदि के वैदिक विधि-विधान पूर्वक करने से मानव शरीर ब्राह्मीय शरीर हो जाता है।[3] वस्तुतः उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि संस्कार प्रथा मात्र नहीं है, अपितु स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर की मानसिक व शारीरिक शुद्धि के लिए जो विधिवत क्रियाएँ की जाती हैं उनको ऋषियों और महर्षियों ने संस्कार नाम दिया है।

उपर्युक्त समस्त प्रयोजनों का समष्टिगत प्रभाव नैतिकता के विकास एवं व्यक्तित्व के निर्माण पर पड़ता है। इन संस्कारों का विधान, विकास व योजना, इन सभी को पूर्ण रूप से यदि हृदयङ्गम किया जाय तो उनसे मानव का जीवन पूर्ण रूप से सुसंस्कृत बन सकता है। मानव मात्र के स्वास्थ्य, आयु तथा अनुशासित जीवन के

---

[1] मनु, २/२७

गार्भैर्होमैर्जातकर्म चौडमौञ्जी निबन्धनैः
बैजिकं गार्भिकञ्चैनो द्विजानामपमृज्यते ॥

[2] मनु, २/२६

निर्माता भी संस्कार स्वीकार किये जा सकते हैं। संस्कार हिन्दू संस्कृति का, चरित्र का, नैतिकता का पूर्णतः विकास व पोषण करते हैं।

संस्कारों का एक और महान् प्रयोजन आध्यात्मिक था। हिन्दू-धर्म का अंग-प्रत्यंग आध्यात्मिक भावनाओं से निर्मित है। उन आध्यात्मिक भावनाओं के विकास व पोषण में संस्कार महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान करते हैं। डा० राजबली पाण्डेय का मत है कि "संस्कार हिन्दू के लिए सजीव धार्मिक अनुभव थे, केवल बाहरी उपचार मात्र नहीं। संस्कार जीवन की आत्मवादी और भौतिक धारणाओं के बीच मध्य मार्ग का काम देते थे। संस्कार एक प्रकार से आध्यात्मिक शिक्षा की क्रमिक सीढ़ियों का कार्य करते थे। यही वह मार्ग था, जिससे क्रियाशील सांसारिक जीवन का समन्वय आध्यात्मिक तथ्यों के साथ स्थापित किया जाता था। हिन्दुओं का विश्वास था कि सविधि संस्कारों के अनुष्ठान से वे दैहिक बन्धन से मुक्त होकर मृत्यु सागर को पार कर लेते हैं।"

क्रमशः संस्कारों का संक्षिप्त परिचय

गर्भाधान-संस्कार—जिस कार्य के द्वारा पुरुष स्त्री में अपना वीर्य स्थापित करता है, वह गर्भाधान-संस्कार कहा जाता है। शौनक ने भी लिखा है—"जिस कर्म की पूर्ति से स्त्री प्रदत्त शुक्र धारण करती है, उसे गर्भाधान कहते हैं।" पूर्व मीमांसा-कार का भी यही कहना है—**गर्भः सन्धार्यते येन कर्मणा तत् गर्भाधानम्।**" वैदिक काल में सन्तति एवं सर्ग के विकास के लिए ऋषि-मुनियों के द्वारा निर्दिष्ट प्रार्थना आदि के वचनों में मातृपितृ प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है, किन्तु यह यहाँ विशेष रूप से ध्यान देने योग्य बात है कि गर्भाधान विषयक विधानों का सर्व-प्रथम व्यवस्थित रूप हमें गृह्य-सूत्रों में प्राप्त होता है। परवर्त्ती धर्मशास्त्र-स्मृति एवं अन्यान्य ग्रन्थों में इस संस्कार के सम्बन्ध में अधिक वैज्ञानिक सामग्री का निर्देश हुआ जहाँ गर्भाधान काल, नक्षत्र एवं स्वीकृत रात्रियों का अत्यन्त विशद विवेचन है।

पुंसवन संस्कार—प्रस्तुत संस्कार गर्भ धारण हो जाने पर किया जाता है। इसका अभिप्राय उस कर्म से था जिसके अनुष्ठान से पुत्र सन्तति का जन्म हो—**"पुमान् प्रसूयते येन कर्मणा तत्पुंसवनमीरितम्"**। इस अवसर पर गीत ऋचाओं में पुत्र का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। पुत्र जन्म देने वाली माता की प्रशंसा की जाती है अथर्ववेद तथा सामवेद में इस प्रकार की प्रार्थनाएँ उपलब्ध होती हैं। गृह्यसूत्रों के अनुसार यह संस्कार गर्भ धारण करने के पश्चात् दूसरे या तीसरे मास में सम्पन्न किया जाता है—**"पुरास्यन्दत इतिमासे द्वितीय तृतीये वा।"**[1] इस अवसर पर एक विशेष कार्य किया जाता है। वह है कि गर्भवती स्त्री के दाहिने नासिका रन्ध्र में वट-वृक्ष का रस गर्भपात का निरोध तथा पुंसन्तति के जन्म के निश्चय के उद्देश्य से छोड़ा जाता था।

Scanned with CamScanner